शास्त्रीय विचार-चर्चा

दीक्षाकालीन केशलोच : कहाँ गायब हो गया

"पर्युषण और केश-लोच कब और क्यों?" शीर्षक से लिखे चित्तन प्रश्न लेख में केश-लोच सबसे सम्भव सन्दर्भ में मैंने लिखा था—"जैन श्रमणों के क्रिया-काण्डों में केश-लोच एक कठोर क्रिया-काण्ड है। अपने हाथों से अपने सिर के बालों को उखाड़ डालना, एक असाधारण साहस, धैर्य, एवं सहिष्णुता की बात है। यह प्रक्रिया देह-भाव से ऊपर उठने की, भिक्षु की, कष्ट-सहन की चरम प्रक्रिया है। ..... जैन साधक के लिए केश-लोच बाह्य तप है, परंतु वह समभाव, कष्ट-सहिष्णुता, धैर्य, अनाकुलता, अहिंसा एवं स्वतंत्र जीवन आदि रूप आध्यात्म-तप के परीक्षण को भी एक कसोटी है........।"

वस्तुतः केश-लोच एक उग्र तप: साधना है। उत्तराध्ययन के अनुसार "वह दारुण है।" सूत्र कृतांग सूत्र में कहा है—"अनेक भिक्षु केश-लोच से संसार हो जाते हैं।”

केश-लोच : कब, कौन, कितनी बार करे

प्राचीन काल का जिन-कल्पी मुनि प्रतिदिन केश-लोच करता था। स्थविर-कल्पी मुनि को भी चार-चार महीनों के अन्तर वर्ष में तीन बार लोच करना चाहिए। वर्षाकाल में तरुण भिक्षुओं को भी प्रतिदिन लोच करना होता है। जराजर्जर शरीर एवं नेत्र-शक्ति से क्षोण और भक्षण साधुओं को छह-छह महीने में और यदि साधु अधिक वृद्ध हों, तो वर्ष में एक बार वर्षाकाल के प्रारंभ में, लोच करना आवश्यक है।

केश-लोच का अपवाद

यह सब वर्णन उत्सर्ग का है, अपवाद की स्थिति में तो इसमें आवश्यक हर-फर हो सकता है। सिर-रोग, मन्द-चश्च, गल्य आदि की विशेष परिस्थिति में लोच करना अनिवार्य नहीं है। यह केश-लोच का अपवाद नया नहीं है। कल्पसूत्र,
निशीध भाष्य आदि प्राचीन-से-प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है।

कैश-लोच : तब और अब

मूल आगम साहित्य में कैश-लोच का वर्णन है, परन्तु वह कब और कितनी बार करना चाहिए, ऐसा विधान रूप में कोई उल्लेख नहीं है। वर्ष में तीन बार, दो बार एवं एक बार तथा वर्षवास में प्रतिदिन आदि लोच करने का यह सब वर्णन प्राचीन भाषाओं, चूर्णिए एवं टीकाओं में है। लोच करने का विधि रूप से वर्णन सिर्फ कल्पसूत्र में है। वर्ष काल में प्रतिदिन तथा वर्ष में तीन बार लोच करने की परम्परा कब और कब लुप्त हुई? यह विचारणीय है। तरुण भिष्कु के लिए तो वर्ष में तीन बार और वर्षाकाल में प्रतिदिन लोच करना अनिवार्य रहा है। आज के तरुण एवं समर्थ भिष्कु, ऐसा कैसे नहीं करते? क्या वे सभी सुखशीलयो हो गए हैं? इसका समुचित उत्तर है किसी आगमाध्यमी का पास? कैश-लोच की परम्परा बदलती-बदलती आज कहाँ और किस रूप में पहुंच गई है, यह किसी से छुपा नहीं है? वृद्ध और अशक्त भिष्कुओं के कैश-लोच समस्ती मूर्त का, आज के तरुण और समर्थ भिष्कु भी किस प्रकार प्राचीन परम्परा-विरुद्ध खुला उपयोग कर रहे हैं? यह सबके सामने है। इसके लिए किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा है क्या?

कैश-लोच : भौतिक हेतुवाद पर आधारित नहीं है

कैश-लोच जैन-साधना की एक अध्यात्म-भावना प्राधान स्वरूप प्रतिष्ठा है। उन साधक की आन्तरिक तितिक्षा का एक उल्कपन्न मान दण्ड है। वह अन्तर-विवेक के प्रकाश में सहज-भाव से करने जैसी साधना है। वह जनवरी में प्रतिष्ठा पाने या साधु संस्था की शोभा बढ़ाने आदि भौतिक वासनाओं की पूर्ति हेतु नहीं है। आत्म-रशिम (मासिक पत्र) 20 अगस्त 1970 का यह कथन तो बहुत नीचे स्तर का है—“समाज से भोजन, वस्त्र, मकान, पूजा-प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करता है, तब उसे (साधु को) कैश-लोच की प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिए।” कैश-लोच के लिए यह लोकसंस्धान का हेतुवाद जैन धर्म से मेल नहीं खाता। 16 यह जैन-साधना के मूल्य को विक्लील गिरा देता है। जो उक्त दृष्टि से बिना अन्तर-जागरण के लोचादि बाह्यक्रिया करता है, वह साधु ही नहीं है। साधक की अन्तराला जगो, वह देह-बुद्धि के निम्न-स्तर से उठा उठे, तभी उक्त क्रिया-काण्डों की सार्थकता है। अन्यथा लोकसंस्धान के चक्कर में तो कुछ ठीक
केश-लोच से बढ़कर भी अत्यन्त घोर देह-पीड़न करते देखे गए हैं, परन्तु उसका आध्यात्मिक मूल्य क्या है? कुछ भी नहीं—

“जन-मन-रंजन धर्मं, मोल न एक छदम”

क्या समाज ऐसे भिषज्यों से अपरिचित है, जो बाहर में बसाबर समय पर केश-लोच करते रहते हैं और अन्दर में मन चाहे गुलधर्रे उड़ाते हैं। साधुसंह तो क्या, नैतिक जीवन भी उसका ठीक नहीं होता। और, कुछ भी ऐसे भी है, जो दाढ़ी आदि का लोच श्रृंगार की दृष्टि से भी करते रहते हैं। उन्हें ठोड़ी पर बढ़े हुए बाल अच्छे नहीं लगते हैं। अत: दाढ़ी का लोच जल्दी-जल्दी किया जाता है। क्या, ऐसे लोगों का केश-लोच जैन-साधना की कोटी में आता है? नहीं आता है। बाहर तप केवल बाहर नहीं है, उसका कोई भी बाहर हेतु नहीं है। वह तो अन्तर्गत-तप की अभिवृद्धि के लिए होता है—तभी वह तप है, अन्यथा नहीं—

“बाहर तप: परम दुर्सर्वमाचस्तवम।
आध्यात्मिकसर्व तपस: परिवृहार्थमु॥” —आचार्य समन्तभद्र

मैं केश-लोच के महत्त्व को भौतिक-आकाशों के निम्न स्तर पर उतारना ठीक नहीं समझता। भोजन, वस्त्र, मकान आदि कुछ सुविधाएँ मिले या न मिले, बाहर प्रतिष्ठा, शोभा की दृष्टि से लोगों को अच्छा लगे या न लगे साधक को इस आधार पर अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय नहीं करना है। सच्चे साधक का, जो भी निर्णय होता है, वह एक मात्र आध्यात्मिक-विकास को ध्यान में रख कर होता है। धर्म-साधना की आत्मा, आत्म-रमणता है, अन्य नहीं।

दीशाकालीन केश-लोच

केश-लोच के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर और भी लम्बी चर्चा की जा सकती है। परन्तु, प्रस्तुत में मुझे केश-लोच के संदर्भ में वह चर्चा करनी है, जो अत्यावश्यक है। कुर्माण्य से केश-लोच की वह परम्परा आज विलुप्त हो चुकी है, जो कभी साधक के जगृत वैराग्य का उज्ज्वल प्रतीक थी, देहाती-भाव की एक निर्मल अध्यात्म-ज्योति थी।

प्राचीन काल में, जब भी कोई स्त्री या पुरुष प्रज्ञा ग्रहण करता था, मुनिधर्म की दीक्षा लेता था, तो अपना केश-लोच भी स्वयं करता था। देह-भाव

शास्त्रीय विचार चर्चा: दीशाकालीन केशलोच: कहाँ गायब हो गया? 155
से ऊँचे उठे हुए साधक का यह अत्यंत था, जो उपस्थित जन-समाज में
वैराग्य-भावना की एक तीव्र लहर पैदा कर देता था। यह दीक्षाकालीन कैश-लोच
साधक स्वर्ग करता था, किसी अन्य से नहीं करवाता था। आज की तरह यह
नाटक नहीं होता था कि नाइ से सिर के बाल मुंडवा लिए, सिर्फ चोटी के रूप
में दो-चार बाल रख छोड़े और दीक्षादाता गुरुजी ने जनता के समक्ष उन्हें राख
की चुटकी से उखाड़ कर कैश-लोच की रस्म अदा कर दी। जय-जयकार हो
गया और भक्तजन बाल-प्रहण करने हेतु ऊपर-तले गिरने पड़ने लगे। उस युग
में ऐसा दिखावा नहीं था। साधक स्वर्ग अपने हाथों से पंचमुफ्त लोच करता था
और विवेक मूलक ढूँढ़ता के साथ साधना-पथ पर चल पड़ता था।

श्रमण भगवान् महावीर दीक्षित होते समय अपने हाथों से कैश-लोच
करते हैं7 भगवती मल्ली (भगवान् मल्लीनाथ) भी स्वर्ग कैश-लुंचन करते हैं।8
भगवान् ऋषभदेव और नेमिनाथ तथा अन्य तीर्थकर भी स्वर्ग कैश-लोच करते
हैं9 तीर्थकर ही नहीं, अन्य साधारण साधक भी ऐसा हो करते हैं। ऋषभदेव
ब्राह्मण10, शिवराजर्षि परिवारक11, महाबलकुमार12, मेघकुमार13, पोटिला14, काली15,
सुभद्रा16, राजीमति17, ? आदि अनेक भिष्म एवं भिष्मुणियाँ दीक्षा-काल में स्वर्ग
कैश-लुंचन कर के दीक्षित-प्रत्रजित होते हैं। सर्वने ‘समेब’ लोच करने का
शांतोलेख है, जिसे कोई भी जिज्ञासु आगमों में यथास्थान देख सकता है।

दीक्षा-काल और नाइ

दीक्षाकालीन कैश-लोच की यथा प्रसाङ चर्चा चलने पर कुछ साधुओं
तथा श्रावकों द्वारा नाई की बात की जाती है। कहा जाता है, कि वर्तमान में नाई
के द्वारा बाल कटाने की प्रथा प्राचीन युग से चली आ रही है। प्राचीन युग में
भी नाई बुलाया जाता था और वह दीक्षाधीन के बालों का मुण्डन कर देता था।
अतः दीक्षा-काल में कैश-लोच आवश्यक नहीं है। इसके लिए मेघकुमार आदि
के उदाहरण दिये जाते हैं। परन्तु, यह कथन सत्य पर आधारित नहीं है। प्राचीन
युग में स्त्रियों के समान पुरुष भी सिर पर लम्बे कैश रखते थे, कटवाते नहीं थे,
जैसा कि आजकल भी राम-कृष्ण आदि महापुरुषों के जीवन में देखा जा सकता
है। अस्तु, दीक्षा लेने समय नाई चार अंगुल छोड़ कर लम्बे बालों को काट देता
था, जिससे कि वे कैश-लुंचन के योग्य स्थिति में आ जाएं। तत्परतातः दीक्षाधीन
चार अंगुल छोड़ देंए केशों का अपने हाथों से लोच करता था। अतएव मेघकुमार के दीक्षा-प्रसंग में समाप्त श्रीलक्षिण के नाई को बुलाकर कहा है— "देवानुप्रिय ! तु जाओ और पहले सुरुनिधित मन्त्रोद्वीक से अपने हाथ-पैरों को अच्छी तरह साफ करो। अनन्तर चार पुट बाले श्वेतवस्त्र से अपना मुख बाँध कर मेघकुमार के केशों को चार अंगुल छोड़कर निरक्रियण योग्य कर दो अर्थात् मेघकुमार के बाल चार अंगुल प्रमाण छोड़कर शेष सब काट दो।"  

राजा के उक्त कथनानुसार नाई सारी क्रिया संपन्न किया कर देता है। तदनन्तर जब मेघकुमार श्रमण भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा-ग्रहण करता है, तो अपने आप पंचमुष्टि केश-लोच करता है—

"तए ण से मेघे कुमारे समवेत पंच मुदिठयं लोचं करेड़।"

मेघकुमार के वर्णन के अनुसार ही भगवती में जमालि राजकुमार का वर्णन है। वहाँ पर भी जमालि का पिता इसी प्रकार नाई से चार अंगुल छोड़कर निरक्रियण योग्य बाल कटवाता है और फिर जमालि दीक्षा लेते समय स्वयं पंचमुष्टि लोच करता है।" मेघकुमार के वर्णन में चार पटल के मुखवस्त्र का उल्लेख है, जो नाई बाल बनाते समय मुख पर बाँधता है। और, यहाँ आठ पटल के वस्त्र का उल्लेख है—

"अठ पड़ला्ए पोतीए मुँह बंधाइ।"

ज्ञाता सूत्र के पद्धम अध्ययन में शैलक राजा भी इसी प्रकार दीक्षा ग्रहण करता है। क्योंकि वहाँ पर भी उनकी रानी पদ्यावती के द्वारा ‘अग्रकोशो’ के ग्रहण करने का उल्लेख है—

"पट्ट्नाल्लावई देवी अग्रदासे पट्ट्नारू।"

दीक्षा-कालीन केश-लोच से पहले नाई के द्वारा अग्रकोशों का कर्तन भी कोई अनिवार्य स्थिति नहीं है। तीर्थकर और नारी जाति की दीक्षाओं के प्रसंग में कहाँ भी नाई को बुलाने का उल्लेख नहीं है। ये सब नाई से अग्रकोश नहीं कटवाते हैं, सीधे ही केश-लोच करते हैं। उक्त वर्णन से सिद्ध है कि दीक्षा-काल में केश-लोच तो हर स्थिति में अनिवार्य है, भले ही कोई साथक दीक्षा के पूर्व नाई से अग्रकोश कटवाए या न कटवाए। दीक्षा के समय स्वयं अपने हाथ से लोच करने की परम्परा रही है।

शास्त्रीय विचार चर्चा: दीक्षाकालीन केश-लोच: कहाँ गायब हो गया?

157
यह प्राचीन परम्परा : लुप्त कैसे हो गई?

प्रश्न है, यह परम्परा लुप्त कैसे हो गई? दीक्षा कालीन केश-लोच कैसे गायब हो गया? और, कैसे उसकी जगह नई के द्वारा मूल से ही पूर्णतया केश-कर्तन ने ले ली? पूरा-का-पूरा सिर मुंडा कर दो-चार बाल रखना और गुरु के द्वारा उनके लोच का प्रदर्शन- दिखाया करना, यह गलत परम्परा कैसे चालू हो गई?

बात यह है, भारतवर्ष का मध्यकालीन युग अश्चर्य पूर्ण रहा है। जैन-परम्परा भी इस अन्धकार से अलग नहीं रह सकी। धार्मिक तेज जब क्षीण हो जाता है, तब प्रायः ऐसा ही हुआ करता है। तत्कालीन स्थिति, जो 'संघ-पदट्क' आदि ग्रन्थों में उल्लिखित है, उससे पता चलता है कि छोटे-छोटे बच्चों को, जिन्हें यह भी पता नहीं कि वैराज किस चिड़िया का नाम है, दीक्षित किया जाता था। अभाव-ग्रस्त दरिद्र लोग, अच्छे रहन-सहन के प्रतीक्षण पर, साधु बना लिए जाते थे। अधिकतर दीक्षित संड़ा लेने और वंश-परंपरा चलाने की भावना से दी जाती थी। एक बार नई से सिर मुंडवा कर दीक्षित हो गए कि फिर अन्य से जैसे-तैसे लोच की बात होती रहती थी। गुरु, चेहलों की गीती आँखों में सब-कुछ हो सकता था। प्रवृत्ति से अप्रवृत्ति में गए कि सब झंझट समाप्त।

दूसरों से लोच करने का मूल भी इसी स्थिति में है। साधन के लिए स्वयं अपने हाथों से लोच करना, प्रथम उत्सर्ग पक्ष है। दूसरों से लोच करना अपवाद पक्ष है, जो हाथ आदि आंगंश की विकृति विशेष में अथवा अन्य किसी विशेष गाढ़गाढ़ परिस्थिति में विहित है। बिना कारण केवल सुविधा की दृष्टि से, दूसरे भिक्षु से लोच करना अपवाद नहीं है। अतः यह शास्त्र-विहित भी नहीं है। स्वयं अपने हाथों से लोच करने में देर लगती है, तत्काल स्वयं मद्दत समाप्त हो जाए। अप देखते हैं, कुछ सन्त दर्द कम करने की मनोकृति से लोच करने का मूहर्द देखते हैं, स्त्रोत का पात एवं मन्त्र जपते हैं, लोच करने में किसका हलका और नम हाथ है, यह भी तलाशा जाता है, जी आदि देव भी लगाए जाते हैं। यह सब केश-लोच के दर्द से बचने के उपक्रम हैं, जो मध्य-युग से चले आ रहे हैं। कोई भी सहदय विचारक देख सकता है, केश-लोच की यह कैसी दृष्टिकोण है। मेरे विचार में यही हुर्तल मना साधनों का कारण था कि दीक्षा-कालीन केश-लोच समाप्त हो गया और उसके स्थान में वर्तमान परम्परा नई से सिर मुंडवाने की परम्परा चालू हो गई।

158 प्रज्ञा से धर्म की सम्प्रेय - द्वितीय पुष्प
प्राचीन परम्परा पुनर्जीवित होनी चाहिए

कैसी भी स्थिति रही हो, दीक्षा-कालीन केश-लोच की परम्परा, जो अपने में एक वैराग्य-प्रधान उज्ज्वल परम्परा थी, विलुप्त हो गई। मैं अपेक्षा करता हूँ, वह फिर से जीवित होनी चाहिए। जब दीक्षाधीन सर्व-साधारण जनता के समक्ष अपने हाथों से अपना लोच करता है, तो कितनी अधिक वैराग्य भाव की उद्दीपित होती है, जैन-साधना कितनी महिमान्वित होती है। जैन-दीक्षा देहातीत भाव की, सहज विरक्ति तथा साधना है। उसके लिए महान धृति-बल की अपेक्षा है। केश-लोच उसी धृति-बल की परिक्षा है, यह परिक्षा दीक्षा के पूर्व होनी चाहिए न!

यह क्या बात है, दीक्षा पहले हो जाती है और उसकी परिक्षा बाद में होती है। बाद में भी परिक्षा होती रहनी चाहिए, वर्ष में तीन बार और वर्षावसान में तो प्रतिदिन लोच होते रहना चाहिए, कोई बात नहीं। किंतु, दीक्षा-काल में स्वयं अपने हाथ से लोच करने की प्राथमिक परीक्षा तो अत्यन्त आवश्यक है।

क्या परम्परा प्रेमी, पुतातन परम्पराओं के अनुसार संयमी और उत्कृष्ट आचारी मुनिराज मेरे उक्त विचार पर कुछ लक्ष्य देंगे? देंगे, तो कब?

संदर्भ :-

1. केशलोचों या दारुणों। —उत्तराधिकार, 19, 34.
2. संतता केश लोए। —सूत्रकृतांश ग. 13.
3. निशीठ भाष्य, 3213.
4. निशीठ भाष्य, 3173.
5. कल्पसूत्र, 9, 57.

क्षरी-छम-लोए या बिनियम असह गिलापेय। —निशीठ भाष्य 3212

वित्तीयप्रेषण पॉन न कारवेजया। असह लोए परिति अधियासेआ। सिरोसेअण बांधने चक्षुणि बा लोए असहतो धर्मं छठड़ौजया। गिलापण्स वालों न कजरति, लोए वा करते गिलापो हवेजया। —चौरणी

6. न लोगससेसण चरे। —आचारा, 1,4,1.
7. आचारा, द्वितीय श्रुतसंपंद
8. जाता सूत्र, अध्य. 8

शास्त्रीय विचार चर्चा: दीक्षाकालीन केशलोच: कहाँ गायब हो गया? 159
9. जम्बूद्वीप प्रज्ञति, उत्तराध्ययन
10. भगवती 9, 33.
11. वहीं 11, 10
12. वही, 11, 11
13. ज्ञातसूत्र 1, 1
14. वहीं 2, 14
15. वहीं 2, 1
16. पुष्पिया, 4
17. उत्तराध्ययन, 12

18. तत्ते यो तेजीए राममा कासवर्म एवं वयासी—गच्छहि यो तुम्हं यो तुमं देवाणुपिया, सुभिष्ट गंधोद्वर्ण निकूँ हत्थपाए पक्खालेहि, सेमाए चउफलाए पोतीए मुहं बाँध ता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलक्ष्मे निकेषणपाद्ध मधुनवरे अग्यकोसे कपोहि।
   —ज्ञातसूत्र 1, 1

19. जमालिस्स खतियकुमारस्स पिया तं कासवप्त एवं वयासी—तुमं देवाणुपिया, जमालिस्स खतियकुमारस्स परेण जत्तेण चउरंगुलक्ष्मे निकेषणपाद्ध मधुनवरे अग्यकोसे पुरिकये।
   ........... तत्ते यों से जमालि खतिय कुमारे सतमेव चं पद्मङ्कूरं लोकः करेई।
   —भगवती सूत्र 9, 33

160· प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा — द्वितीय पुष्प